19वीं सदी की सामाजिक कुरीतियाँ एवं लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का दृष्टिकोण

प्राप्तिः 14.08.2025
स्वीकृतः 11.09.2025

57

डॉ0 अलोक कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास विभाग)
गोचर महाविद्यालय, रामपुर मनिहारान, सहारनपुर
ईमेलः *aloketah383@gmail.com*

सारांश

19वीं सदी का भारत अनेक सामाजिक कुरीतियों से ग्रसित था। पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव ने भारतीयों के मन में यह एहसास भर दिया था कि उनका सामाजिक, सांस्कृतिक ढाँचा कमजोर है। अतः इस सदी के विद्वानों ने सामाजिक, सांस्कृतिक सुधार की आवश्यकता को समझा। समाज में व्याप्त अंधविश्वास, कुरीतियाँ, पाखण्ड किसी न किसी धार्मिक सिद्धांत पर टिकी हैं। सती प्रथा, बाल विवाह, बेमेल विवाह, बहुविवाह, कन्या वध, दहेज, पर्दा प्रथा, अस्पृश्यता जैसे अमानवीय व्यवहार ने भारतीय समाज को रूग्ण बना दिया था। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक आदि सामाजिक कुरीतियों को दूर कर भारतीय समाज को मजबूत बनाना चाहते थे। किन्तु तिलक ने भारतीय समाज सुधार में अंग्रेजों के हस्तक्षेप को स्वीकार नहीं किया। लोकमान्य बाल

गंगाधर तिलक पुरातनपंथी होते हुए भी परिस्थितियों के अनुसार सामाजिक परिवर्तन को स्वीकार करने के लिए तत्पर थे।

मुख्य बिंदु

पुरातनपंथी, सामाजिक कुरीतियाँ, अंधविश्वास, पाखण्ड, अस्पृश्यता

19वीं शताब्दी का काल भारतीय इतिहास में सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक उथल–पुथल का काल था। विदेशियों द्वारा शासित होने की चेतना तथा पश्चिमी सांस्कृति के प्रभाव ने भारतियों के मन में यह एहसास भर दिया था, कि उनका सामाजिक और सांस्कृतिक ढाँचा कमजोर है। जिसका फायदा उठाकर अंग्रेजों ने भारत को उपनिवेश बना लिया है। इस सदी के सभी विद्वान सामाजिक और धार्मिक सुधार की आवश्यकता महसूस करते थे।

अंग्रेजों ने भारतीय सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था पर भयंकर कुठाराघात किये। उनका उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार और प्रसार करना था। डा० ताराचन्द के अनुसार, "सम्पूर्ण भारत पर भयंकर कफन सा पड़ा हुआ था, जिसके नीचे जनता के विभिन्न वर्ग ठण्डे पड़ गये थे और जन

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i03.57

समाज का दम घुट रहा था। मुस्लिम और हिन्दू नरेशों को अलग–अलग कर दिया गया था। 19वीं सदी तक भारतीय समाज में अनेक कुरीतियों तथा अंधविश्वासों ने जड़ जमा ली थी। रजनीपाम दत्त के अनुसार "ब्रिटिश भारत में भारत की सामाजिक व्यवस्था पूर्ण रूपेण पतन के गर्त में जा चुकी थी।"[1] इन परिस्थितियों का लाभ उठा कर अंग्रेजों ने भारतीय सामाजिक ढाँचे को ध्वस्त कर दिया।

धर्म समाज में फैले अंधविश्वासों, कुप्रभावों, कुरीतियों तथा पाखण्डों को सामाजिक मान्यता दे देता है। क्योंकि सामाजिक विकृतियाँ किसी न किसी धार्मिक सिद्धान्त पर टिकी होती है। इसलिए रूढ़ियाँ भी उतनी ही पवित्र हो गयी थी, जितना कि धर्म।[2]

19वीं सदी में हमारे समाज में स्त्रियो की दशा अत्यन्त दयनीय थी। शिक्षा, स्वास्थ तथा सामाजिक स्थिति में स्त्रियाँ निम्नतम् स्तर पर थी। के. सी. व्यासय के शब्दों में – "भारत की स्त्रियाँ नरक का सा जीवन व्यतीत कर रही थी, नारी को भारत में कोई सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। शिक्षा एवं नवीन चेतना का कोई प्रश्न नहीं था।"[3] ए. आर. देसाई के अनुसार, "भारतीय नारी सती एवं बाल हत्या जैसी बर्बर क्रूर प्रयासों का शिकार थी।"[4] पति की मृत्यु पर पति के साथ चिंता में भस्म हो जाना अर्थात् सती हो जाना। प्राचीन काल में सती प्रथा को महत्व प्रदान नहीं किया गया था। ऋग्वेद में इस प्रथा का उल्लेख नहीं है। महाभारत में सती होने के कुछ उदाहरण मिलते हैं। विराट पर्व में सैरन्धी के सती होने का उल्लेख, मौसला पर्व में वासुदेव की मृत्यु होने पर उनकी चार पत्नियों देवकी, भद्र, रोहिणी और मदिरा के सती होने का संकेत है।"[5]

मध्यकाल में सामाजिक पाखण्ड और पुरोहितवाद विवेक पर हावी होने लगा। ऐसे समय में सती प्रथा जैसी अमानवीय परम्परा को धार्मिक आधार प्रदान कर व्यापक बना दिया गया। सती हो जाने से उसके पति के पाप नष्ट हो जाते हैं। वह स्वर्ग में अपनी पत्नी के साथ सुख से रहेगा। लोगों में यह धारणा घर कर गयी कि धर्म ने विधवा के लिए सती होने का ही मार्ग बताया।[6]

19वी सदी में बाल विवाह जैसी कुरीति भारतीय समाज को खोखला कर रही थी। बाल विवाह इस समय समाज में घुन की तरह काम कर रहा था।[7] इस कुप्रथा की जड़ में भी धार्मिक रूढ़िवादी ही था। अनेक धार्मिक ग्रन्थों में इस बात पर बल दिया गया था कि रजोवृत्ति से पूर्व ही कन्या का विवाह हो जाना चाहिए अन्यथा उसके माता–पिता पाप के भागीदार बनेंगे। बाल विवाह के लिए मध्यकालीन, राजनैतिक परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी थीं कन्याओं को आक्रान्ताओं के हाथों बचाने का एक उपाय का बाल विवाह। इसके अतिरिक्त दहेज प्रथा ने भी बाल विवाह को प्रोत्साहित किया। अतः इसके कारण अब समाज में केवल रजोवृत्ति से पूर्व बल्कि आठ से दस वर्ष की आयु में ही विवाह करना आवश्यक समझा जाने लगा।[8] संयुक्त परिवार प्रणाली ने भी बाल विवाह को काफी प्रोत्साहित किया।

बाल विवाह के कारण अनेक दुष्परिणाम उत्पन्न हुए जैसे रूग्ण संतान, शिक्षा में बाधा, बचपन में ही बालिकाओं का माँ बनना, प्रसव पूर्व मृत्यु हो जाना आदि। बाल विवाह 19वीं शताब्दी मे अपनी पराकाष्ठा पर था। समय–समय पर इस अमानुशिक परम्परा को रोकने का प्रयास किया गया। मुगल सम्राट अकबर और जहांगीर ने दिल्ली के आस–पास इसे बन्द कर दिया। परन्तु इस प्रथा पर पूर्ण प्रतिबंध कभी नहीं लगाया जा सका।[9]

बेमेल विवाह भारतीय समाज की एक अन्य अन्यायपूर्ण प्रथा थी, जिसने स्त्रियों को परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ लिया था। बेमेल विवाह कुलीनता का घोतक था। अव्यस्क लड़कियों

का विवाह अपने से आयु में कई गुना बड़े पुरूषों के साथ कर देना आम बात थी। पुरूष अपनी पत्नी की मृत्यु या संतान न होने पर ऐसे विवाह करता था। दुबाय ने एक प्रथा को बड़े ही दुख के साथ लिखा है, "मैं उन पांच या छः वर्ष की अभागिन कन्याओं का उललेख यहाँ नहीं करूँगा जिनका विवाह साठ वर्ष के ऊपर के पुरूष से होता है, तथा अपने युवा अवस्था के पूर्व ही विधवा हो जाती है।[10] बंगाल के एक 80 वर्षीय ब्राह्मण की करीब दो सौ पत्नियाँ थी और उसकी सबसे छोटी पत्नी की उम्र थी–सिर्फ आठ साल।[11] पी. सी. रे के अनुसार, "तत्कालीन हिन्दू समाज में साठ वर्ष की आयु का वर बारह अथवा चौदह वर्ष की कन्या के साथ विवाह कर सकता था और यह प्रथा सामान्य थी।[12] डा. रेदित कोष एक तेरह वर्ष की ऐसी कन्या का उल्लेख करते हैं जिसका विवाह कलकत्ता के एक 75 वर्षीय अवस्था वाले धनी तथा ख्याति प्राप्त व्यक्ति के साथ हुआ था।[13]

19वीं शताब्दी में बहुविवाह का भी प्रचलन था। जिसने नारियों की दशा को शोचनीय बना दिया। यह प्रथा मुस्लिमों के साथ–साथ हिन्दुओं में भी व्याप्त थी। बंगाल में बहु विवाह का प्रचलन सर्वाधिक था। महाराष्ट्र के संत तुकाराम की दो पत्नियाँ थी। बंगाल के कुलीन वर्ग के लोग बहुत विवाह करते थे और बंगाल में ब्राह्मणों द्वारा भी बहुविवाह किया जाना सम्मानजनक माना जाता था।[14]

महिलाओं की प्रगति में एक बड़ी बाधा पर्दा प्रथा का प्रचलन था। इस सदी में पर्दा प्रथा का प्रचलन समाज के उच्च वर्ग में था। प्राचीन काल में जो पर्दा आवश्यकतानुसार व परिस्थितिवश ही रहता था वही पर्दा सदा रहने लगा।[15] मेगास्थनीज के अनुसार कोई स्त्री पर्दा नहीं करती थी, शाही परिवार की स्त्रियाँ पुरूषों के समान ही स्वतन्त्रतापूर्वक घूम–फिर सकती थी, पर्दा प्रथा के प्रचलन के बढ़ने का कारण मुस्लिम आक्रान्ताओं का बार–बार आना ही था, क्योंकि ऐसे विदेशी आक्रान्ता जो इस धरती पर आते थे वो यहाँ के धन, धान्य एवं सौन्दर्य के लोभ में ही आते थे।[16]

कन्या वध तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में प्रचलित ऐसी कुप्रथा थी, जिसके पीछे कोई ध ार्मिक कारण नहीं बल्कि सामाजिक कारण थे। इस प्रथा का प्रचलन उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, पंजाब आदि में प्रचलित थी। टॉड ने अपनी पुस्तक एनालिसिस एंड एंटीक्यूरस ऑफ राजस्थान भाग प्रथम में लिखा है, "पुत्री का जन्म राजपूत परिवारों के लिए एक दुखद घटना थी।[17] स्त्रियों से सम्बंधि ात समस्याओं के समाधान के लिए कन्या वध जैसी कुप्रथा का प्रचलन हुआ। 1853 की रीपोर्ट के अनुसार यह प्रथा सभी जातियों में प्रचलित थी।[18] मालवा तथा राजपूताना में प्रति वर्ष 20,000 कन्याओं का वध ा होता था।[19] बड़ौदा के निकट झरिया राजपूतों में यह प्रथा अत्यधिक प्रचलित थी।[20]

19वी सदी में स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था। शिक्षा के अभाव में महिलाओं का सम्पूर्ण विकास नहीं हो पाता था। भारतीय समाज में वैदिक काल में महिलाओं की शिक्षा की व्यवस्था थी, किन्तु 19वी सदी मे उन्हें शिक्षा से दूर रखा गया। इस काल में यह अंधविष्वास भी व्याप्त था कि जो बालिका शिक्षा प्राप्त करेगी, उसका पति विवाहोपरान्त शीघ्र ही मर जाएगा, अर्थात् वह विधवा हो जोयगी।[21]

बंगाल और दक्षिण में अस्पश्यता का भाव देश के अन्य भाग की अपेक्षा अधिक क्रूर व कठोर थी। मलयालम भाषा माजी क्षेत्र में निम्न जाति की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। यदि कोई शूद्र घृष्टता पूर्वक किसी ब्राह्मण के घर में प्रवेश कर जाता था तो उसी स्थान पर शूद्र की हत्या की जा सकती थी। इन्हें उच्च जाति के लोगों के बीच अस्पृश्य समझा जाता था। यह छूने योग्य नहीं थे।[22]

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i03.57

वैदिक काल में भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था में विभाजित था। जो 19वी सदी तक आते–आते कर्म पर आधारित न होकर जन्म पर आधारित हो गयी। अब इसमें योग्यता और कर्म के लिए कोई स्थान नहीं रह गया। अस्पृश्यता को स्पष्ट करते हुए काणे ने लिखा है कि "प्राचीन भारत में अस्पृश्यता सम्बंधी जो विधान बने थे वे किसी जाति सम्बन्धी विद्वेश के प्रतिफल नहीं थे वरन् उनके पीछे मनोवैज्ञानिक या धार्मिक धारणाएं एवम् स्वस्थ सम्बन्धी विचार थे, जो कि मोक्ष के लिए आवश्यक माने जाते थे क्योंकि मोक्ष के लिए शरीर मन का पवित्र होना अनिवार्य था।[23]

वर्ण व्यवस्था में शूद्रों की सामाजिक स्थिति निम्न थी। इस सदी में वे अछूतों की श्रेणी में आ गये। धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों ने शूद्रों के लिए कठोर नियम बना दिए। उन्हें शिक्षा से दूर कर दिया गया। आपस्तम्ब धर्म सूत्र के अनुसार शूद्र को मार डालने पर उतना ही पाप लगता है जितना कि एक कौवा, गिरगिट, मोर, चक्रवक, राजहंस, मेंढ़क, नेवला, छून्दर, कुत्ता आदि को मारने से होता है।[24] छुआछूत के परिणाम कभी–कभी हिंसात्मक भी हो जाते थे। निम्न जात के व्यक्ति (पर्या) कि हत्या तक कर दी जाती थी। एक जवान पर्या की कीमत तीन रूपये और सौ सेर चावल था जोकि एक बैल की कीमत के बराबर थे।[25]

19वी सदी के भारतीय समाज में घृणित दास प्रथा का भी प्रचलन था। इस प्रथा को अंग्रेजों ने बढ़ावा दिया क्योंकि उन्हें अपने उपनिवेशों के लिए दास चाहिए थे। 'द कैम्ब्रिज शार्टर हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' में लिखा है कि दास प्रथा भारतीय समाज में पूर्व से ही प्रचलित थी। किन्तु अंग्रेजों ने इसके फलने फूलने में दासों का व्यापार किया जाता था तथा ब्रिटेन के अन्य उपनिवेशों में भारत के दासों को भेजा जाता था।[26] दक्षिण भारत मे परिया एवं बेलमार जन्म से ही दासता की स्थिति में रहते थे, मालाबार में दास प्रथा बहुत अधिक थी।[27]

इस सदी में दहेज प्रथा अपनी जड़े जमा रही थी। आधुनिक शिक्षा के साथ ही साथ दहेज बढ़ता गया।[28] अनके माता–पिता अपनी पुत्री के विवाह में इतने अधिक ऋणग्रस्त हो जाते थे कि उन्हें अपना शेष जीवन ऋणी या बंधक व्यक्ति के रूप में व्यतीत करना पड़ता था क्योंकि वे उसका भुगतान नहीं कर पाते थे।[29] प्राचीन समय में पिता अपनी पुत्री को गृहस्थ जीवन में सहयोग देने के उद्देश्य से उसे धन धान्य एवं गृहस्थी से जुड़ी वस्तुएं प्रदान करता था। यह उसके लिए कोई बाध्यता नहीं थी। शिक्षा के साथ–साथ दहेज की माँग भी बढ़ती चली गई। वधू पक्ष हमेशा वर पक्ष को आर्थिक रूप से संतुष्ट करने का प्रयास करता था। वर पक्ष की माँग पूरी न कर पाने पर लड़की यात्ना, प्रताड़ना तथा घुटन की जिन्दगी व्यतीत करती। कई बार उन्हें प्रताड़ित कर उनकी हत्या कर दी जाती। कभी–कभी पिता के कष्टों को कम करने के लिए कन्यायें स्वयं आत्म–हत्या कर लेती थी।[30] दहेज के कारण अन्य कुरीतियों को भी बढ़ावा मिला। कन्याओं को मंदिर की सेवा के लिए देवदासी बना दिया जाता। इनका पुजारी दैहिक शोषण करते। दहेज के कारण बाल विवाह, कन्या हत्या जैसी सामाजिक कुरीतियों को बढ़ावा मिला। माता–पिता दहेज के लिए धन एकत्रित करने के लिए अवैध कार्यों में लिप्त हो जाते, और कभी–कभी बंधुआ मजदूर बनने तक बाध्य हो जाते।

सामाजिक कुरीतियों ने समाज के विकास को अवरूद्ध कर दिया। विदेश यात्रा के निषेध की भावना ने भारतीय समाज को कूप मंडूक बना दिया। शिक्षा के सीमित प्रसार से भारतीय समाज आधुनिक विश्व के नवीन ज्ञान, नवीन दार्शनिक एवं राजनैतिक उदारवादी सिद्धान्तों तथा तथ्यों से

अनभिज्ञ रह गया। 19वी सदी के भारत को सामाजिक सांस्कृतिक और धार्मिक सुधार की आवश्यकता थी। अंग्रेजों ने हिन्दू धर्म पर प्रारम्भ से ही प्रहार किए। अंग्रेज ईसाई धर्म के प्रचार और प्रसार बल दे रहे थे। इसे अपना ध्येय बना कर कार्य कर रहे थे कि हर परिस्थितियों में भारत ईसाई धर्म का प्रचार एवं प्रसार करना आवश्यक है।[31]

19वी सदी बौद्धिक और सांस्कृतिक उथल–पुथल का काल थी। पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव और विदेशी शक्ति द्वारा पराजित होने की चेतना के कारण लोगों में नई जागृति पैदा हुई। भारतीय सामाजिक ढाँचे और सांस्कृतिक दुर्बलताओं के कारण विदेशियों ने भारत को उपनिवेश बना लिया था। प्रबुद्ध भारतीयों ने अपने समाज की कमजोरियों को पहचान और उन्हें दूर करने के उपाय खोजने लगे। उनका मत था कि भारतीय समाज की बुराइयों को भारतीय परम्पराओं और सिद्धान्तों से ही दूर किया जा सकता है। 19वी सदी के सभी बुद्धिजीवी इस विश्वास के थे कि सामाजिक और धार्मिक सुधारों की तत्काल जरूरत है।[32]

बंगाल में सामाजिक सांस्कृतिक कुरीतियों को दूर करने लिए राजा राम मोहन राय के नेतृत्व में सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हुए। उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की। वे स्त्रियो की स्थिति को सुधारने के कट्टर समर्थक थे। देवेन्द्र नाथ ठाकुर, केशव चन्द्र सेन, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर दयानन्द सरस्वती जैसे समाज सुधारकोंने सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किए। इस सम्बन्ध में प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण परमहंस मिशन आदि उल्लेखनीय है। बाल गंगाधर तिलक भी सामाजिक कुरीतियों को दूर कर भारतीय समाज को मजबूत बनाना चाहते थे। किन्तु उन्होंने भारतीय समाज सुधार में अंग्रेजों की भूमिका को स्वीकार नहीं किया। बाल गंगाधर तिलक को यह अत्यन्त ही अपमान जनक लगता था कि हिन्दू लोग अंग्रेज नौकरशाही के समक्ष जा कर उनसे सामाजिक कानून बनाने की याचना करें और इस प्रकार दूसरों को दिखायें कि हिन्दू इतने पतित हो गये है कि वे अपनी सामाजिक समस्याओं को भी नहीं सुलझा सकते।[33]

तिलक का मत था कि अतीत में भारतीयों ने राजनैतिक योग्यता, संगठनात्मक एवं प्रशासनिक उपलब्धियाँ हासिल की हैं। इसलिए सामज सुधार में भी इनके प्रयास अवश्य ही सफल होंगे। उनका विश्वास था कि सामाजिक चेतना का विकास धीरे–धीरे होता है। बाल गंगाधर तिलक अपने युग की सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के पक्षधर थे। किन्तु समाज सुधार में अंग्रेजों के हस्तक्षेप को स्वीकार नहीं करते थे। तिलक ने सम्वत् आयु अधिनियम जिसमें विवाह की आयु दस वर्ष से बढ़ाकर बारह वर्ष कर दी थी, का विरोध किया। 1890 में कलकत्ता के चतुर्थ सामाजिक सम्मेलन में बाल विवाह का खण्डन करते हुए वयस्क विवाह का समर्थन किया गया और तिलक ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया।[34] नागपुर में जी. एस. खापर्डे के सभापतित्व के पाँचवे सामाजिक सम्मेलन में विधवा विवाह का प्रस्ताव किया गया था। तिलक ने इस प्रस्ताव पर सहमति इस संशोधन के साथ दिया की विधवा विवाह–आन्दोलन के समर्थक विवाह समारोह में सम्मिलित होकर ही सन्तोष न करें, अपितु वैवाहिक भोज में भी उन्हें भाग लेना चाहिए।[35]

इसी प्रकार तिलक अस्पृश्यता की प्रथा के भी विरोधी थे। गणेश उत्सव के जलूसों में निम्न जातियों के लोगों को उच्च जातियों के लोगों के साथ अपनी–अपनी गणेश प्रतिमायें ले चलने की

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i03.57

अनुभूति दी थी। 1918 लोनावाला जिला सम्मेलन के अवसर पर तिलक ने 'डिप्रेस्ड क्लास मिशन' (दलित वर्ग संघ) के वी. आर. शिंदे के साथ अस्पृश्यता के प्रश्न पर विचार विनमय करते हुए उन्होंने संघ के कार्यों में सहयोग देने का वचन दिया था। दलित वर्ग संघ के सम्मेलन के दूसरे दिन तिलक ने भाषण भी दिया और यह स्पष्ट रूप से घोषणा भी कि अस्पृश्यता का अन्त होना चाहिए। उनका विचार था कि अस्पृश्यता को किसी भी नैतिक आध्यात्मिक आधार पर उचित नहीं ठहराया जा सकता है। उन्होंने कहा था कि "यदि ईश्वर भी अस्पृश्यता को सहन करने लगे तो ऐसे ईश्वर को कतई मान्यता नहीं दूँगा।"

बाल गंगाधर तिलक पुरातनपंथी होते हुए भी परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन एवं संशोधन करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। इसीलिए उन्होने बाल विवाह का विरोध किया, विधवा विवाह को समर्थन दिया। एक ही जाति के विभिन्न उपजातियों में विवाह सम्बंधों का समर्थन किया। इसके साथ ही साथ अस्पृश्यता जैसी सामाजिक बुराई का घोर विरोध किया।

संदर्भ

1. डॉ. तारा चन्द : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली–1972, पृ० सं०–15
2. आर. पी. रजनी पामदत्त – आज का भारत, अनुवाद स्वरूप वर्मा, द मैकमिलन कम्पनी ऑफ लिमिटेड, प्रथम हिन्दी संस्करण, 1977 पृ० सं०–116
3. ए.जे. दुबाय – हिन्दू मैनर्स कस्टम्स एण्ड सेरोमोनीज, एच. के. व्यूकम्प द्वारा सम्पादित, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस लन्दन, तृतीय संस्करण, 1968, पृ० सं०–31
4. के.सी. व्यास– द सोशल रेनेजा इन इंडिया, बोर एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्रा० लि० बाम्बे, 1957, पृ० सं०–31
5. ए. आर. देसाई – भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, द मैकमिलन कम्पनी ऑफ लि० 1976, पृ० सं०–219
6. उपेन्द्र नाथ ठाकुर : द हिस्ट्री ऑफ सोसाइड इन इन्डिया, पृ० सं०–126–127
7. वही, पृ० सं०–128
8. उपेन्द्र नाथ ठाकुर : द हिस्ट्री ऑफ सुसाइड इन इण्डिया, पृ० सं०–171
9. हरिदत्त बेदालंकार : हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास पृ० सं०–306
10. के. सी. व्यास : द सोशल रेनेशा इन इंडिया, बोर एण्ड कम्पनी पब्लिसर्श प्रा० लि० बम्बई, 1957, पृ० सं०–48
11. ए. जे. दुबाय : उपरोक्त, 1968, पृ० सं०–210
12. विपिन चन्द्र : भारत का स्वतंत्रता संघर्श, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली वि. वि., 2005, पृ० सं०–48
13. सर पी. सी. रे : यूनिवर्सिटी कॉलेज आफ साइन्स एण्ड टेक्नोलॉजी, कलकत्ता भाग 6, पृ० सं०–225

14. डॉ0 रेदिता घोष : चाइल्ड मैरिज द इण्डियन माइनेटर, पृ० सं०–30
15. एम. ए. बुरा : राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इण्डियन लिबरलिज्म फाम राममोहन राय यू गोखले, बड़ौदा, 1938 पृ० सं०–53
16. वही पृ० सं०–54
17. एम. जी. उपाध्याय : भारतीय सामाजिक क्रांति, पृ० सं०–55
18. टॉड : एनालिसिस एण्ड सन्टीक्यूरस ऑफ राजस्थान, भाग प्रथम पृ० सं०–505
19. ब्राउन जेन्सी : इण्डियन इनफैन्टीसाइड इट्स ओरीजन एण्ड सप्रेसन लंदन पृ० सं०–108–129
20. वही पृ० सं०–58
21. वही पृ० सं०–31
22. एस. नटराजन : ए सेन्चुरी ऑफ सोषन रिफार्म इन इण्डिया, 1962, पृ० सं०–178
23. ए एस. अल्तेकर : पोजीशन ऑफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० सं०–24
24. एम. ए. बुश : राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इण्डियन लिबरलिज्म, बड़ौदा, 1938, पृ० सं०–43
25. पी. वी. काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास, अनुवादक अर्जुन चौबे कश्यप, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश शासन लखनऊ, पृ० सं०–168
26. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1–9–9–25 तथा 14 और 1–9–26–1 (काणे के धर्मशास्त्र इतिहास से उद्धत)
27. ए. जे. दुबाय : हिन्दू मैनर्स कस्टम एण्ड सेनेमनीज, उपरोक्त, लन्दन, 1968 पृ० सं०–56
28. एच. एच. ड्राइवेल : द कैम्ब्रज शाट्रर हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० सं०–721
29. ए. जे. दुबाय : उपरोक्त, पृ० सं०–58
30. जे. एन. फर्कुहर : मार्डन रिलीजियस मूवमेन्ट इन इण्डिया, ओरियण्टल पब्लिशर्स एण्ड बुकसेलरर्स, दिल्ली 1967, पृ० सं०–406
31. वही
32. एस. नटराजन : ए सेन्चुरी ऑफ सोशल रिफार्म, उपरोक्त पृ० सं०–406
33. आर. सी. अग्रवाल : भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संविधान, एस. चन्द कम्पनी लि० नई दिल्ली, 1992 पृ० सं०–27
34. विपिन चन्द्र : आधुनिक भारत, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली, 2005, पृ० सं०–96
35. वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद : आधुनिक भारतीय राजनैतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण, अग्रवाल हॉस्पीटल रोड़, आगरा, उ० प्र० 244